सविनय अवज्ञा आन्दोलन

[CIVIL DISOBEDIENCE MOVEMENT]

"मैंने घुटने टेककर रोटी माँगी थी पर मुझे पत्थर मिला.....समस्त भारत एक कारागार है। मैं इस ब्रिटिश कानून को नहीं मानता और स्वतन्त्र विचारों को प्रकट करने में बाधक आरोपित शान्ति की दमघोंटू शोकमय एकरसता को भंग करना अपना पुनीत कर्तव्य मानता हूँ।" —महात्मा गाँधी

सन् 1923 से 1929 तक भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं भारतीय राजनीति
(NATIONAL MOVEMENT OF INDIA FROM 1923 TO 1929 AND INDIAN POLITICS)

फरवरी, 1922 में गाँधीजी द्वारा चौरी-चौरा काण्ड की हिंसात्मक घटना के कारण असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया गया और 4 मार्च, 1922 को सरकार द्वारा गाँधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन असहयोग आन्दोलन स्थगित हो जाने के कारण स्वराज्य की मंजिल दूर हो गई थी। जनता के मार्ग-निर्देशन के लिये किसी नये कार्यक्रम की आवश्यकता थी। इसलिए इस काल-खण्ड में भारतीय राजनीति में तीन प्रमुख स्थितियाँ उत्पन्न हुईं जिनमें **प्रथम**, स्वराज्य दल की स्थापना, उसके कार्य और अन्त। **द्वितीय**, साइमन कमीशन और **तृतीय**, सर्वदलीय सम्मेलन और नेहरू रिपोर्ट। इन स्थितियों की संक्षिप्त जानकारी निम्नानुसार है :

(1) **स्वराज्य दल की स्थापना और कार्य**—सन् 1919 के मॉण्टफोर्ड सुधार अधिनियम के अन्तर्गत होने वाले चुनावों में काँग्रेस ने असहयोग आन्दोलन के कारण भाग नहीं लिया। फरवरी, 1922 में आन्दोलन स्थगित हो जाने और गाँधीजी को बंदी बनाये जाने के बाद काँग्रेस के पास जनता के मार्गदर्शन के लिये कोई कार्यक्रम नहीं था। ऐसी परिस्थितियों में सी. आर. दास, पण्डित मोतीलाल नेहरू, हकीम अजमलखाँ और विट्ठल भाई पटेल आदि नेताओं ने 1 जनवरी, 1923 को इलहाबाद में **स्वराज्य** दल की स्थापना की। इन नेताओं ने उसके कार्यक्रमों का प्रचार करने के लिये देश का तूफानी दौरा किया। इस दल का उद्देश्य गाँधीजी के समान औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति करना था लेकिन सभी नेताओं के मार्ग भिन्न-भिन्न थे। स्वराज्य दल के सदस्य कौंसिलों का निर्वाचन लड़कर जनता में लोकप्रिय होना चाहते थे। वे अपनी अड़ंगा नीति द्वारा सरकार को सही रास्ते पर लाना चाहते थे। स्वराज्य दल ने अपना कार्यक्रम निर्धारित किया जिसके अन्तर्गत सरकार के बजट को रद्द करना, दमनकारी कानूनों का विरोध करना, रचनात्मक कार्यों में सहयोग देना, राष्ट्रीय शक्ति में वृद्धि करना, आदि थे। सन् 1923 में हुए आम चुनावों में कई प्रान्तों में स्वराज्य दल को अभूतपूर्व सफलता मिली। स्वराज्य दल के मध्य प्रान्त और बंगाल का विधानसभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त करके द्वैध शासन को असफल कर दिया। उन्होंने अन्य प्रान्तों तथा केन्द्रीय शासन के कार्यों में बाधा डालने की नीति का सफलतापूर्वक पालन किया। किन्तु सन् 1925 में चितरंजनदास की मृत्यु और पार्टी के भीतर पैदा हुए मतभेदों के कारण सन् 1926 में हुए चुनावों में स्वराज्य दल को अधिक सफलता नहीं मिल सकी। इसके अतिरिक्त, हिन्दू-मुस्लिम दंगों तथा मालवीय और लाला लाजपत राय द्वारा हिन्दुओं की रक्षा के लिये केन्द्रीय विधान-मण्डल में नेशनलिस्ट पार्टी का गठन आदि कारणों से सन् 1926 के अन्त तक स्वराज्य पार्टी का अस्तित्व समाप्त हो गया।

(2) **साइमन कमीशन** (Simon Commission)—सन् 1919 के भारतीय शासन अधिनियम योजना पर रिपोर्ट देने के लिये ब्रिटिश संसद का **सर साइमन** की अध्यक्षता में एक सात-सदस्यीय समिति 8 नवम्बर,

1927 को गठित की गयी। इस समिति को **'साइमन कमीशन'** के नाम से जाना जाता है। इस समिति में सभी सदस्य अंग्रेज थे। इसमें भारतीयों को सम्मिलित नहीं किया गया था। इसलिए सम्पूर्ण भारत में इस आयोग का विरोध या बहिष्कार किया गया। 7 फरवरी, 1928 को **'साइमन आयोग'** भारत आने से लेकर उसके भारत में रहने तक सभी जगह हड़तालों, काले झण्डों और साइमन वापस जाओ के नारों से उसका स्वागत किया गया।

साइमन आयोग की मुख्य अनुशंसाएँ निम्नांकित थीं :

(1) प्रान्तों में द्वैधशासन समाप्त करके उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाय।

(2) केन्द्रीय शासन में कोई भी परिवर्तन न किया जाय।

(3) भारत के लिये संघ शासन की स्थापना की जाय।

(4) अल्पसंख्यकों के हितों के लिए गवर्नर जनरल को विशेष शक्तियाँ दी जायें।

(5) प्रान्तीय विधानमण्डल के सदस्यों की संख्या में वृद्धि की जाये और सरकारी सदस्यों की व्यवस्था समाप्त कर दी जाय।

(6) म्यांमार को भारत से पृथक् कर दिया जाये।

(7) अधिक व्यापक मताधिकार की व्यवस्था की जाए आदि।

साइमन कमीशन की रिपोर्ट का मूल्यांकन—साइमन कमीशन को भारतीयों ने निम्नांकित कारणों से अस्वीकार कर दिया था :

(1) इसमें भारतीयों की औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग पूरी नहीं हुई थी।

(2) केन्द्र में पूर्व की भाँति ही अनुत्तरदायी शासन की अनुशंसा की गई थी।

(3) प्रान्तों में उत्तरदायी शासन स्थापित करने के साथ-साथ गवर्नरों को विशेष शक्तियाँ दी गईं।

उपर्युक्त कारणों से **सर शिवास्वामी अय्यर** ने आयोग की रिपोर्ट को **"रद्दी की टोकरी में फेंक देने योग्य बताया"** तो दूसरी ओर **प्रो. कूपलैण्ड, प्रो. ई. रॉबर्ट्स, प्रो. कीथ** आदि जैसे विचारकों ने साइमन रिपोर्ट की अत्यधिक प्रशंसा की। मि. कूपलैण्ड ने इसे भारतीय समस्याओं का व्यापक अध्ययन कहकर सम्बोधित किया वस्तुतः साइमन रिपोर्ट न तो दोषरहित थी और न पूर्णतया अस्वीकार करने योग्य थी लेकिन इसकी अस्वीकृति का कारण विवेकात्मक और व्यावहारिक भी था।

(3) **सर्वदलीय सम्मेलन तथा नेहरू रिपोर्ट**—फरवरी, 1928 में ब्रिटिश संसद द्वारा भेजे गये साइमन कमीशन का जब भारतीयों ने कड़ा विरोध किया तो इसकी व्यापक प्रतिक्रिया हुई। ब्रिटिश कैबिनेट में अनुदार दल के भारतमन्त्री **लॉर्ड बर्केनहेड** ने भारतीयों को चुनौती देते हुए कहा कि वे ऐसे संविधान का निर्माण कर ब्रिटेन की संसद के समक्ष प्रस्तुत करें जिसे भारत में सभी वर्गों की स्वीकृति प्रदान हो। अन्यथा उन भारतीयों द्वारा जिन्होंने अभी तक अपने पैरों पर खड़ा होना ही नहीं सीखा हो, साइमन आयोग का बहिष्कार किया जाना उनकी कोई बुद्धिमानी प्रतीत नहीं होती। काँग्रेस ने इस चुनौती को स्वीकार कर 28 फरवरी, 1928 को दिल्ली में **डॉ. एम. ए. अन्सारी** की अध्यक्षता में सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन किया। इस सम्मेलन में 29 राजनीतिक संगठनों ने भाग लिया। सभी दल इस बात पर सहमत थे कि पूर्ण उत्तरदायी शासन को अपना आधार बनाकर नया संविधान बनाया जाये। दो महीने में सम्मेलन की कुल 25 बैठकें हुईं। बैठक में प्रस्तुत किए गए अनेक प्रश्नों पर प्रतिनिधि सहमत थे। इसके बाद 19 मई, 1928 को ये सभी प्रतिनिधि बम्बई (मुम्बई) में एकत्र हुए। इस बार संविधान का प्रारूप बनाने के लिये **पण्डित मोतीलाल नेहरू** की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई। इस समिति में दो मुसलमान तथा एक सिक्ख भी था। इस समिति ने 19 बैठकों में संविधान का प्रारूप तैयार किया। **डॉ. अन्सारी** की अध्यक्षता में लखनऊ में आयोजित सम्मेलन में स्वीकार कर लिया गया। संविधान का यह प्रारूप **'नेहरू रिपोर्ट'** के नाम से प्रसिद्ध है।

नेहरू रिपोर्ट के प्रमुख अनुशंसाएँ या सुझाव—नेहरू रिपोर्ट की प्रमुख अनुशंसाएँ निम्नलिखित थीं :

(1) **औपनिवेशिक स्वराज्य**—भारत को तुरन्त औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान किया जाना चाहिए और उसका स्थान ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत अन्य उपनिवेशों के समान होना चाहिए।

(2) **प्रान्तों में उत्तरदायी शासन**—प्रान्तों में द्वैध शासन का अन्त करके उत्तरदायी शासन की स्थापना की जानी चाहिए। केन्द्र में भी गवर्नर जनरल को संवैधानिक प्रमुख के रूप में कार्य करना चाहिए।

(3) **संघीय व्यवस्था**—भारत के लिये संघात्मक शासन ही उपयुक्त बताया गया था परन्तु कहा गया था कि केन्द्र को अधिक शक्तियाँ प्रदान की जायें।

(4) **मूल अधिकार**—स्त्री-पुरुष को समान 19 मौलिक अधिकार दिये जायें जिसमें कानून के समक्ष समानता, सम्पत्ति, निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा का अधिकार और धार्मिक स्वतन्त्रता और अधिकार आदि प्रमुख हैं।

(5) **सर्वोच्च न्यायालय**—रिपोर्ट में कहा गया था कि भारतीयों द्वारा ब्रिटेन की प्रिवी कौंसिल में अपील करने की व्यवस्था को समाप्त कर भारत में अन्तिम अपीलीय न्यायालय के रूप में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की जाये।

(6) **साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली की समाप्ति**—रिपोर्ट में देश की एकता को सुदृढ़ करने के लिये साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को समाप्त कर संयुक्त निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था का सुझाव दिया गया था।

(7) **केन्द्रीय विधान मण्डल**—रिपोर्ट में कहा गया था कि केन्द्रीय विधान मण्डल द्विसदनात्मक होना चाहिए। निचले सदन का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष रूप से होना चाहिए। उच्च सदन का निर्वाचन परोक्ष रूप से होना चाहिए जिसमें निम्न सदन की सदस्य संख्या 500 और उच्च सदन की सदस्य संख्या 200 होनी चाहिए।

(8) **देशी रियासतें**—रिपोर्ट में कहा गया था कि नये संविधान में केन्द्रीय सरकार को रियासतों के ऊपर वे सभी अधिकार प्राप्त होने चाहिए जो अभी ताज के अधीन केन्द्रीय सरकार को प्राप्त थे। नरेशों के अधिकारों की सुरक्षा का वचन दिया जाये।

(9) **नवीन प्रान्तों का गठन**—प्रतिवेदन में सिन्ध को मुम्बई से पृथक् करके उसे एक पृथक् प्रान्त बनाने के साथ ही उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त को भी अन्य प्रान्तों के समान ही वैधानिक स्तर प्रदान करने का सुझाव दिया गया था।

नेहरू रिपोर्ट पर प्रतिक्रिया—अगस्त 1928 में लखनऊ के सर्वदलीय सम्मेलन में तो नेहरू रिपोर्ट को सभी ने एक मत से स्वीकार कर लिया था परन्तु बाद में विभिन्न दलों ने अलग-अलग नेहरू रिपोर्ट पर विचार किया, परिणामस्वरूप रिपोर्ट के बारे में मतभेद पैदा हो गये। काँग्रेस ने नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार तो कर लिया और डॉ. अन्सारी जैसे राष्ट्रवादी मुस्लिम ने भी इसका समर्थन किया परन्तु 31 दिसम्बर, 1928 को दिल्ली में आयोजित सर्वदलीय मुस्लिम सम्मेलन में मौलाना मोहम्मद अली और मि. जिन्ना जैसे मुस्लिम पृथकतावादियों ने एक स्वर से प्रतिवेदन का विरोध किया। उधर ब्रिटिश सरकार द्वारा भी इस प्रतिवेदन को अत्यधिक प्रगतिवादी कहते हुए इसकी आलोचना की और उसे अस्वीकार कर दिया।

नेहरू रिपोर्ट का महत्व—नेहरू रिपोर्ट को भारतीय जनमत के सभी पक्षों द्वारा अस्वीकार कर दिया गया, किन्तु फिर भी रिपोर्ट के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। यह प्रतिवेदन स्वयं में एक ऐसा व्यापक प्रलेख था जिसमें भारतीय जनमत की आकांक्षाओं और भावनाओं को प्रतिबिम्बित किया गया था। इसके महत्व के सम्बन्ध में **सर शफात अहमद खाँ** ने कहा था कि—**"नेहरू प्रतिवेदन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रचनात्मक प्रयास था।" जी. आर. प्रधान** के शब्दों में **"सन् 1928 की नेहरू साम्प्रदायिकता की भावना मिटाने का उग्र तथा स्पष्ट प्रयत्न था।"**[1]

निःसन्देह नेहरू रिपोर्ट भारतीयों की बुद्धिमता और राजनीतिज्ञता का सर्वोत्तम उदाहरण है तत्कालीन प्रधानमन्त्री बर्केनहेड की चेतावनी का उत्तर था।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन—अगस्त, 1928 में प्रकाशित नेहरू रिपोर्ट के सम्बन्ध में मुसलमानों के अतिरिक्त काँग्रेस के नेताओं में अत्यधिक मतभेद थे। पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस जैसे नवयुवक नेता अपनी पूर्ण स्वराज्य की माँग पर दृढ़ थे दूसरी ओर पण्डित मोतीलाल नेहरू जैसे पुरानी पीढ़ी के नेता तत्कालीन परिस्थितियों में औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग को उचित समझते थे। इसी मतभेद के कारण जब दिसम्बर, 1928 में काँग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में हुआ तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि इस रिपोर्ट को लेकर

1 "The Nehru Report of 1928, embodied the frankest attempt yet made by Indians to face squarly the difficulties of communalism." —*G.R. Pradhan*

काँग्रेस में विघटन हो जायेगा और नेहरू रिपोर्ट के सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं लिया जा सकेगा परन्तु उन विषम परिस्थितियों में महात्मा गाँधी ने मध्यस्थता करके दोनों गुटों में समझौता करा दिया जिसके परिणामस्वरूप नेहरू प्रतिवेदन को स्वीकार कर लिया गया। इसी समय गाँधीजी ने काँग्रेस से एक प्रस्ताव और पारित करवा लिया जिसके द्वारा सरकार को एक अल्टीमेटम दिया गया जिसका महत्वपूर्ण अंश निम्न प्रकार हैं :

"यदि ब्रिटिश संसद इस विधान को ज्यो-का-त्यों 31 दिसम्बर, 1929 तक या उससे पहले स्वीकार कर ले तो काँग्रेस इस विधान को अपना लेगी बशर्ते कि राजनीतिक स्थिति में कोई परिवर्तन न हो लेकिन यदि उस तिथि तक ब्रिटिश संसद उसे स्वीकार न करे या इसके पहले ही अस्वीकार कर दे तो काँग्रेस देश का कर-बन्दी की सलाह देकर अन्य उपायों के आधार पर जिन्हें वह बाद में निश्चित करेगी, अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन चलायेगी।" लेकिन ब्रिटेन में सत्ता परिवर्तन होने पर भी लेबर दल सरकार ने भी भारतीयों की माँगों की ओर ध्यान नहीं दिया और इस प्रकार नेहरू रिपोर्ट सफल न हो सकी। सन् 1930 के प्रारम्भ तक भारत के चारों ओर उत्तेजना का वातावरण निर्मित होता जा रहा था। राजनीतिक, आर्थिक स्थिति बहुत अधिक खराब थी। इस बात की आशंका होने लगी थी कि यदि गाँधीजी अहिंसात्मक आन्दोलन का शुभारम्भ न करते तो बहुत अधिक दुर्दशा होती और सरकार के दमनचक्र के कारण भारत में हिंसक क्रान्ति का सूत्रपात होता। अतः इन परिस्थितियों में गाँधीजी ने काँग्रेस में **'सविनय अवज्ञा आन्दोलन'** का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव पर विचार का लिए काँग्रेस कार्यकारिणी ने 14 से 16 फरवरी को एक बैठक साबरमती में आयोजित की। काँग्रेस ने स्थिति का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन कर एक प्रस्ताव पास किया और गाँधीजी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने के सम्पूर्ण अधिकार दे दिये। इस आन्दोलन को चलाने का गाँधीजी ने क्यों निर्णय लिया, वे परिस्थितियाँ कौन-सी थीं कि मार्च, 1930 को गाँधीजी द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रारम्भ किया गया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रमुख कारण
(MAIN CAUSES OF DISOBEDIENCE MOVEMENT)

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी माने जाते हैं :

(1) **शोचनीय आर्थिक स्थिति**—गाँधीजी द्वारा चलाये गये सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिये भारतीयों की शोचनीय आर्थिक दशा विशेष रूप से उत्तरदायी थी। सन् 1930 के आस-पास देश में भारी मन्दी और व्यापक रोजगार के कारण भारतीयों में असन्तोष व्याप्त था। मजदूर, व्यापारी, किसान और सामान्य जनता इससे परेशान थी। सरकार ने गाँधीजी की न्यूनतम माँगों को भी अस्वीकार कर दिया था। ऐसी स्थिति में गाँधीजी ने दूसरा आन्दोलन चलाने का निर्णय लिया।

(2) **असन्तोष और उत्तेजना का वातावरण**—देश में असन्तोष और उत्तेजना का वातावरण तेजी से फैलता जा रहा था। राजनीति में नवयुवक वर्ग अधिक सक्रिय हो गया था। सरकार ने रुपये की कीमत 16 पैसे से बढ़ाकर 18 पैसे कर दी थी जिससे इंग्लैण्ड को अधिक लाभ हुआ था। सरकार ने मजदूर संगठनों के नेताओं पर मेरठ षड़यन्त्र का अभियोग लगा कर उन्हें गिरफ्तार कर लिया था। जिससे मजदूर उत्तेजित हो उठे। सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त के क्रान्तिकारी कार्यों और लाहौर षड्यन्त्र के कारण भारत का राजनीतिक वायुमण्डल अत्यधिक उत्तेजित हो गया। दिसम्बर, 1928 के कलकत्ता अधिवेशन में पारित गाँधीजी द्वारा भेजे गये अल्टीमेटम का सरकार ने कोई उत्तर नहीं दिया। परिणामस्वरूप लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता का निर्णय लिया गया।

(3) **स्वतन्त्रता दिवस की घोषणा (सन् 1929 का लाहौर अधिवेशन)** —अभी तक ब्रिटिश सरकार की नीतियों एवं दृष्टिकोणों से भारतीयों को यह निश्चय हो गया था कि ब्रिटिश सरकार उस समय तक भारत को स्वराज्य नहीं देगी जब तक वह इसके लिये विवश न हो जाय। अतः भारी क्षोभ और निराशा के वातावरण में पण्डित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में दिसम्बर, 1929 को लाहौर में काँग्रेस का अधिवेशन आयोजित किया गया था। अधिवेशन में 31 दिसम्बर, 1929 की रात्रि को 12 बजे रावी नदी के तट पर भारत का तिरंगा, झण्डा फहराकर पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पारित किया गया। काँग्रेस के विधान की पहली धारा में **'स्वराज्य'** शब्द का अर्थ पूर्ण स्वाधीनता उल्लेखित किया गया और नेहरू रिपोर्ट वापस लेने तथा पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति हेतु जनता का आह्वान किया गया। यह भी निश्चय किया गया कि 26 जनवरी का दिन **'स्वाधीनता**

दिवस' के रूप में मनाया जायेगा। आवश्यकता पड़ने पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने का काँग्रेस कार्यसमिति को अधिकार दे दिया गया।

(4) **इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी की सरकार एवं दिल्ली घोषणा-पत्र**—मई, 1929 में इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी की सरकार स्थापित हुई। भारतीयों को लेबर पार्टी की सरकार से बहुत आशाएँ थीं लेकिन भारत के सम्बन्ध ब्रिटेन की नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री **मैक्डोनेल्ड** ने भारत को शीघ्र ही राष्ट्रमण्डल में समानता का दर्जा दिये जाने की घोषणा की तथा भारत से गवर्नर को बातचीत के लिये इंग्लैण्ड बुलाया गया। इसके फलस्वरूप 31 अक्टूबर, 1929 को गवर्नर लार्ड इरविन ने जो **'दिल्ली घोषणा'** की वह बहुत ही अस्पष्ट थी। इसमें भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान करने की कोई तिथि निश्चित नहीं थी। भारत का नवयवुक वर्ग इस घोषणा से असन्तुष्ट था।

(5) **स्वाधीनता दिवस की घोषणा**—लाहौर अधिवेशन में लिये गये निर्णय के अनुसार 26 जनवरी, 1930 को काँग्रेस ने पहला पूर्ण स्वाधीनता दिवस बहुत उत्साह से मनाया। इस समारोह में स्वाधीनता को जनता का जन्म-सिद्ध अधिकार बताया गया।[1]

काँग्रेस द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने का निर्णय—14 से 16 फरवरी, 1930 तक काँग्रेस कार्यकारिणी की एक बैठक साबरमती में आयोजित की गई। इस बैठक में एक प्रस्ताव पारित करके गाँधीजी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने के सम्पूर्ण अधिकार दे दिये गए।

यद्यपि कार्यकारिणी ने गाँधीजी को आन्दोलन प्रारम्भ करने के सम्पूर्ण अधिकार दे दिये थे किन्तु शान्ति और समझौते में विश्वास करने वाले गाँधीजी ने वायसराय को आन्दोलन प्रारम्भ करने से पूर्व एक अवसर और दिया। उन्होंने एक पत्र गवर्नर को लिखा जिसमें कहा गया कि यदि निम्नलिखित 11 शर्तों को सरकार मान ले तो उसे सविनय अवज्ञा आन्दोलन का नाम भी नहीं सुनना पड़ेगा :

1. पूर्ण नशाबन्दी हो।
2. मुद्रा विनिमय में एक रुपया एक शिलिंग चार पेंस के बराबर माना जाय।
3. मालगुजारी आधी कर दी जाय और उसे विधानमण्डल के नियन्त्रण में रखा जाय।
4. नमक पर लगने वाला कर बन्द किया जाय।
5. सैनिक व्यय में कमी की जाये और प्रारम्भ में इस आधा कर दिया जाय।
6. बड़े-बड़े अधिकारियों के वेतन कम से कम आधे कर दिये जायें।
7. विदेशी वस्त्रों पर तट कर लगाया जाय ताकि देशी उद्योगों को संरक्षण प्राप्त हो।
8. तटीय व्यापार संरक्षण कानून पारित किया जाय।
9. हत्या या हत्या की चेष्टा में दण्डित व्यक्तियों को छोड़कर सभी राजनीतिक बन्दियों को रिहा कर दिया जाय एवं सभी मुकदमे वापस ले लिए जायें।
10. खुफिया पुलिस तोड़ दी जाय या उसे जन-नियन्त्रण में रखा जाए।
11. आत्मरक्षा के लिए बन्दूक आदि हथियारों के लाइसेंस दिये जायें।

शासन ने उक्त माँग-पत्र का सहनुभूतिपूर्वक उत्तर नहीं दिया। इतना ही नहीं, उसने काँग्रेसी कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी प्रारम्भ कर दी। इस समय सुभाषचन्द्र बोस व अन्य 11 व्यक्तियों को एक वर्ष की सजा भी दी गई। फिर भी गाँधीजी ने एक और अवसर देने के लिये अपने एक अंग्रेज मित्र रेनाल्ड्स के हाथों एक पत्र वायसराय को भेजा। इसका उत्तर वायसराय ने बहुत ही निराशाजनक दिया और उल्टे गाँधीजी को ही सावधान करते हुए कहा कि **"मुझे दुःख है कि गाँधीजी वह रास्ता अपना रहे हैं जिसमें कानून और सार्वजनिक शान्ति भंग होना आवश्यक है।"** इसके उत्तर में **गाँधीजी** ने कहा कि "मैंने घुटने टेककर रोटी माँग थी परन्तु मुझे उसके स्थान पर पत्थर मिला। ब्रिटिश राष्ट्र केवल शक्ति के सामने झुकता है इसीलिए वायसराय के पत्र से मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। भारत के भाग्य में तो जेलखानों की शान्ति ही एकमात्र शान्ति है। सम्पूर्ण भारत एक जेलखाना है। मैं उन ब्रिटिश कानूनों का अर्थ समझता हूँ और मैं उस शोकमय शान्ति को भंग करना चाहता हूँ जो राष्ट्र के दिल को कष्ट दे रही है।"

1 डॉ. पट्टाभि—काँग्रेस का इतिहास, पृष्ठ 295।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रारम्भ एवं दाण्डी यात्रा—शासन द्वारा गाँधीजी के पत्र का सहानुभूतिपूर्वक उत्तर न मिलने के कारण गाँधीजी के सामने आन्दोलन प्रारम्भ करने के अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता नहीं था। इसलिए 11 मार्च, 1930 को साबरमती के मैदान में 75 हजार व्यक्तियों ने एकत्रित होकर प्रण किया कि जब तक स्वाधीनता नहीं मिल जाती तब तक न तो हम स्वयं चैन लेंगे और न सरकार को चैन लेने देंगे। उन्होंने इसमें से 79 ऐसे कार्यकर्ता चुने जो 12 मार्च, 1930 को साबरमती आश्रम से डाण्डी समुद्र तट की ओर चल पड़े। 200 मील की लम्बी दूरी पैदल चलकर 24 दिनों में पूरी की गई। जैसे-जैसे गाँधीजी के नेतृत्व में कार्यकर्ताओं का समूह आगे बढ़ता गया वैसे ही वैसे मार्ग में स्थित गाँवों का जनसमूह उमड़ने लगा। उनसे गाँधीजी यही कहते थे कि **"ब्रिटिश साम्राज्य एक अभिशाप है, मैं इसे समाप्त करके रहूँगा।"** वे खादी पहनने, शराब पीना बन्द करने, सरकारी नौकरी छोड़ने का उपदेश भी देते थे। 5 अप्रैल, 1930 को गाँधीजी अपने कार्यकर्ताओं के साथ डाण्डी पहुँचे। अगले दिन 6 अप्रैल, 1930 को प्रार्थना के उपरान्त डाण्डी समुद्र तट पर गाँधीजी स्वयं अपने हाथ से नमक बनाकर ब्रिटिश सरकार के नमक कानून को तोड़ दिया। इस प्रकार नमक कानून तोड़कर गाँधीजी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन का श्रीगणेश किया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन का कार्यक्रम—6 अप्रैल, 1930 को गाँधीजी द्वारा स्वयं नमक कानून तोड़ने के पश्चात् आन्दोलन के निम्नलिखित कार्यक्रम निर्धारित किये गए :

1. गाँव-गाँव में नमक कानून को तोड़कर नमक बनाया जाना चाहिए।
2. महिलाओं द्वारा शराब, अफीम और विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना दिया जाना चाहिए।
3. विदेशी वस्त्रों का प्रयोग बन्द करके सार्वजनिक रूप से विदेशी वस्त्रों की होली जलाई जानी चाहिए।
4. हिन्दुओं को अस्पृश्यता का त्याग कर देना चाहिए।
5. विद्यार्थियों द्वारा सरकारी स्कूलों और कॉलेजों का बहिष्कार कर दिया जाना चाहिए।
6. सरकारी कर्मचारियों को नौकरियों से त्याग-पत्र देने चाहिए।
7. 4 मई को महात्माजी की गिरफ्तारी के बाद करबन्दी को भी आन्दोलन के कार्यक्रम में सम्मिलित कर लिया गया।

आन्दोलन की प्रगति—महात्मा गाँधी द्वारा नमक कानून तोड़े जाने के पश्चात् यह आन्दोलन सम्पूर्ण देश में फैल गया। स्थान-स्थान पर नमक कानून तोड़ा जाने लगा। मुम्बई, बंगाल, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रान्त में नमक कानून तोड़कर अवैध रूप से नमक बनाया जाने लगा। महात्मा गाँधी के आह्वान पर महिलाओं ने भी बढ़-चढ़कर इस आन्दोलन में भाग लिया। अकेली दिल्ली में ही विदेशी वस्त्रों और दुकानों पर 1,600 महिलाओं ने धरना दिया जिसके परिणामस्वरूप अनेक दुकानें बन्द हो गईं। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करके सार्वजनिक रूप, से उनकी होलियाँ जलाई गईं। आन्दोलन प्रारम्भ होने के एक माह के भीतर ही 200 पटेल और पटवारियों के अतिरिक्त, अनेक सरकारी कर्मचारियों ने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिये। इसके अतिरिक्त स्थान-स्थान पर विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूलों और कॉलेजों का परित्याग करके राष्ट्रीय शिक्षा को अपनाया। इस प्रकार आन्दोलन के अधिकांश कार्यक्रम को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार की सफलता के सम्बन्ध में ब्रेलिस फोर्ड ने लिखा है कि **"सन् 1930 की शरद ऋतु तक विदेशी वस्त्रों का आयात पूर्व वर्ष के इन्हीं महीनों की आयात की तुलना में तिहाई या चौथाई के बीच रह गया था। मुम्बई में अंग्रेज व्यापारियों की 16 मिलें बन्द हो गईं और 32 हजार मजदूर बेकार हो गये। इसके विपरीत, भारतीय व्यापारियों की मिलें दुगुनी गति से कार्य कर रही थीं।"**[1] इस आन्दोलन में खान अब्दुल गफ्फार खाँ के नेतृत्व में पठानों एवं अन्य राष्ट्रवादी मुसलमानों को छोड़कर मि. जिन्ना के नेतृत्व अल्पसंख्यक मुसलमानों ने भाग नहीं लिया। फिर भी सविनय अवज्ञा आन्दोलन को अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हुई।

आन्दोलन का दमन—प्रारम्भ में तो सरकारी अधिकारियों ने आन्दोलन की तकनीक का उपहास किया था परन्तु जब आन्दोलन पूरे देश में आँधी की तरह फैल गया तो सरकार की नींद हराम हो और उसने आन्दोलन को कुचलने के लिये दमन-चक्र चलाना प्रारम्भ कर दिया। प्रदर्शनियों और सभाओं पर रोग लगा दी गई। लाठी प्रहार रोजाना की आम बात हो गई। 21 मई, 1930 को धरसाना में 2,500 स्वयंसेवकों ने नमक के

1 H. N. Brailsford, *Rebel India*, p. 26.

गोदाम पर चढ़ाई की तो उन पर पाशविक लाठी प्रहार किया गया। इस लाठी प्रकार का करुण दृश्य यह था कि गोदाम के आसवास की सम्पूर्ण भूमि पीड़ा से कराहते हुए आदमियों से पट गई थी। किसी का कन्धा टूट गया था और किसी की खोपड़ी। लोगों के सफेद कपड़े खून में तर थे। धारसाना के बाद बडाला तथा दूसरे स्थानों पर भी ऐसी ही घटनायें हुईं। लगभग 90 हजार लोगों को जेलों में डाल दिया गया। इनमें स्त्रियाँ भी थीं। कक्षाओं में घुसकर विद्यार्थियों व अध्यापकों को भी लाठियों से पीटा गया। स्त्रियों को निर्दयतापूर्वक पीटा गया उनसे अभद्र व्यवहार किया गया। देश को अध्यादेश शासन के आधीन कर दिया गया। चारों और काले कानूनों की गूँज थी। काँग्रेस को अवैध संस्था घोषित कर दिया गया। लोगों की सम्पत्ति को गलत तरीके से छीना गया। पण्डित जवाहरलाल नेहरू व गाँधीजी को बन्दी बना लिया गया। किन्तु इन नेताओं की गिरफ्तारी के बाद भी आन्दोनलन निरन्तर चलता रहा। पुलिस के दमन कार्य की प्रतिक्रिया के रूप में कुछ स्थानों पर जनता ने हिंसात्मक कार्यवाही की। शोलापुर में एक उत्तेजित भीड़ ने थाने जला दिए तथा कुछ चौकीदारों को मार डाला। संगठित कार्यकर्ताओं ने व्यवस्था स्थापित करने में सफलता प्राप्त की लेकिन पुलिस ने 25 व्यक्तियों को भूनकर और सैकड़ों को घायल करके प्रतिशोध लिया।

जहाँ अंग्रेज सरकार ने आन्दोलन को कुचलने के लिये कोई प्रयास शेष नहीं छोड़ा था वहीं सरकार की पहल पर एक अंग्रेज पत्रकार मि. सोलोकोम्ब, डॉ. जयकर और तेजबहादुर सप्रू ने गाँधीजी से जेल में मिलकर समझौते के प्रयास किये। लेकिन गाँधीजी ने जो शर्तें रखीं उन शर्तों को सरकार मानने के लिये तैयार नहीं थी। इसलिए आन्दोलन निरन्तर चलता रहा। इसी बीच सरकार द्वारा तीन गोलमेज कान्फ्रेस का आयोजन लन्दन में किया गया। इन गोलमेल सम्मेलनों का विवरण निम्नानुसार है :

प्रथम गोलमेज सम्मेलन 12 नवम्बर, 1930—साइमन आयोग की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद भारतीय समस्याओं को सुलझाने के लिये सरकार ने लन्दन में प्रथम गोलमेज सम्मेलन 12 नवम्बर, 1930 को आयोजित किया इस सम्मेलन का उद्घाटन ब्रिटिश सम्राट द्वारा किया गया। इसमें 86 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसमें (काँग्रेस ने भाग लिया) तेजबहादुर सप्रू, श्रीनिवास शास्त्री, डॉ. अम्बेडकर जैसे व्यक्तियों ने भाग लिया किन्तु सम्मेलन में भारत की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था ने भाग नहीं लिया। इस प्रकार सम्मेलन में **भारत की आत्मा** विद्यमान नहीं थी। राष्ट्रीय मुसलमानों को आमन्त्रित नहीं किया गया था।

प्रथम गोलमेज सम्मेलन के सुझाव—(1) संघशासन के आधार पर भारत के नये संविधान के निर्माण पर बल दिया गया।

(2) प्रान्तों में उत्तरदायी शासन की स्थापना एवं अल्पसंख्यकों के लिये गवर्नर को कुछ विशिष्ट शक्तियाँ दी गयीं।

(3) केन्द्र में आंशिक उत्तरदायी शासन स्थापित हो जिसमें गवर्नर जनरल को विशेष शक्तियाँ प्राप्त हों।

(4) अंतरिम काल की आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए कुछ रक्षात्मक विधान रखे जायें।

इस सम्मेलन में सर तेजबहादुर सप्रू व डॉ. जयकर ने औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना पर बल दिया। **डॉ. जयकर** ने कहा कि **"यदि आप आज भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान कर दें तो स्वतन्त्रता की आवाज स्वतः समाप्त हो जायेगी।"** परन्तु नये संविधान में साम्प्रदायिक समस्या के हल के बारे में प्रतिनिधियों में कोई समझौता नहीं हो सका। बहुसंख्यक वर्ग का कहना था कि संयुक्त निर्वाचन पद्धति को अपनाया जाय यद्यपि अल्पसंख्यकों के लिये स्थान सुरक्षित किये जा सकते हैं। परन्तु मुस्लिम प्रतिनिधियों ने पृथक् निर्वाचन मण्डल की माँग की। **मि. जिन्ना** अपनी 14 शर्तों को स्वीकार किये जाने पर बल देते रहे। **डॉ. अम्बेडकर** ने भी हरिजनों के लिये पृथक् प्रतिनिधित्व की माँग की। विद्वानों का मत है कि इस सम्मेलन में शामिल होने वाले प्रतिनिधि सरकार के ही पिट्ठू थे।

ब्रिटिश सरकार ने यह समझ लिया कि राष्ट्रीय काँग्रेस के सहयोग के बिना भारत की कोई समस्या हल नहीं हो सकती। अतः समझौते का मार्ग प्रशस्त करने के लिए वायसराय ने गाँधीजी तथा काँग्रेस कार्यसमिति के 19 सदस्यों को मुक्त कर दिया। काँग्रेस के नेताओं में पण्डित मोतीलाल नेहरू (इलाहाबाद में स्वराज्य) को उनकी अस्थिरता के कारण पहले ही रिहा कर दिया गया था। नेताओं का मत था कि स्थितियाँ इतनी अच्छी नहीं हैं कि काँग्रेस दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग ले। इसी दौरान 6 फरवरी, 1931 को पण्डित मोतीलाल नेहरू का निधन हो गया।

गाँधी इरविन समझौता (5 **मार्च**, 1931)—प्रथम गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के पश्चात् तेजबहादुर सप्रू, डॉ. जयकर आदि नेताओं ने गाँधीजी को सलाह दी कि यदि काँग्रेस सरकार के साथ वार्ता नहीं करेगी तो सम्भव है कि सरकार देशी रियासतों और अल्पसंख्यकों से ऐसा समझौता कर ले जो भारत के हित में न हो। इन नेताओं के प्रयासों के परिणामस्वरूप 5 मार्च, 1931 को महात्मा गाँधी और वायसराय लार्ड इरविन के बीच एक समझौता हुआ जिसे **गाँधी-इरविन समझौता** कहा जाता है। इस समझौते के अनुसार लार्ड इरविन ने सरकार की ओर से निम्नलिखित आश्वासन दिये :

1. उन राजनीतिक बन्दियों के अतिरिक्त जिन पर हिंसा का आरोप है, शेष को मुक्त कर दिया जायेगा।
2. आन्दोलन अवधि में की गई सम्पत्ति उनके स्वामियों की वापस कर दी जायेगी।
3. सभी अध्यादेश और चालू मुकदमे वापस ले लिये जायेंगे।
4. भारत के लोग समुद्र के किनारे नमक बना सकते हैं।
5. भारतीय शराब व विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर शान्तिपूर्वक धरना भी दे सकते हैं।

इन समझौते में महात्मा गाँधी द्वारा काँग्रेस की ओर से लार्ड इरविन को निम्न बातों का आश्वासन दिया गया :

1. सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया जायेगा।
2. काँग्रेस निकट भविष्य में लन्दन में होने वाले द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेगी।
3. काँग्रेस ब्रिटिश सामान के बहिष्कार का राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग नहीं करेगी।
4. काँग्रेस अपनी इस माँग को त्याग देगी कि आन्दोलन अवधि में पुलिस द्वारा जो अत्याचार किए गए हैं, उनकी निष्पक्ष जाँच होनी चाहिए।
5. काँग्रेस द्वारा यह समझौता स्वीकार न करने पर सरकार शान्ति व व्यवस्था के लिये आवश्यक कार्यवाही करने हेतु स्वतन्त्र होगी।

गाँधी-इरविन समझौते पर अंग्रेज सरकार और गाँधीजी दोनों को ही कटुआलोचना का शिकार होना पड़ा। कुछ लोगों का कहना था कि अंग्रेज सरकार द्वारा भगतसिंह को रिहा करने की शर्तें स्वीकार न करने पर गाँधीजी को समझौता वार्ता तोड़ देनी चाहिए थी। पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस आदि ने कहा कि गाँधीजी ने अनजाने में भारत को बेच दिया है।[1] ऐसे कई आरोप लगाये गये। यह समझौता इरविन की कूटनीतिक चालों की अभूतपूर्व सफलता थी। इस समझौते पर **टाइम्स** (The Times, London) पत्र में यह टिप्पणी प्रकाशित हुई कि—"**इस प्रकार की विजय किसी वायसराय को बहुत कम मिलती है।**"

लेकिन गाँधी-इरविन समझौते के तत्काल बाद अनेक दुःखद घटनायें हुईं। जिसमें भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी तथा गणेश शंकर विद्यार्थी का बलिदान प्रमुख घटनाएँ थीं।

शासन द्वारा गाँधी-इरविन समझौते का उल्लंघन—17 अप्रैल, 1931 को **लार्ड विलिंगडन** भारत के नये वायसराय नियुक्त हुए। उन्होंने गाँधी-इरविन समझौते को भंग करना शुरू कर दिया; जैसे—पुलिस द्वारा जबरन सभाएँ भंग करने काँग्रेस कार्यकर्ताओं के घरों पर छापा मारने, उल्टे काँग्रेस पर दोषारोपण किया जाना कि वह समझौते का पालन नहीं कर रही है। तब गाँधीजी ने सुझाव दिया कि समझौते को लागू करने के लिए एक '**स्थायी समझौता बोर्ड**' नियुक्त कर दिया जाये परन्तु इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया गया। दुःखी होकर गाँधीजी ने वायसराय को एक तार दिया जिसमें द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में न जाने सम्बन्धी विचार व्यक्त किये। 27 अगस्त, 1931 को शिमला में गाँधीजी की वायसराय से भेंट हुई। वायसराय ने गाँधीजी से आग्रह किया कि स्थायी शान्ति का मार्ग निकालने के लिये सम्मेलन में भाग लें। इस वार्ता के बाद गाँधीजी 29 अगस्त, 1931 को काँग्रेस की ओर से एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में लन्दन को रवाना हो गये।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन—7 सितम्बर, 1931 को लन्दन में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। गाँधीजी सम्मेलन प्रारम्भ होने के बाद के 5 दिन बाद अर्थात् 12 सितम्बर, 1931 को लन्दन पहुँचे। इस समय तक ब्रिटेन की राजनीतिक स्थिति बहुत परिवर्तित हो चुकी थी। पेजट्ड के स्थान पर **सर सेम्युअल होर** भारतमन्त्री नियुक्त हुए जो पक्के अनुदारवादी थे। इस कारण निःसन्देह गाँधी जी के लन्दन पहुँचने से पहले ही सब कुछ निर्णय हो चुका था। सम्मेलन मात्र दिखावा था। सरकार ने जान बूझकर सम्मेलन में साम्प्रदायिक समस्या को बढ़ावा दिया। सम्मेलन में ऐसे ही लोगों को बुलाया गया था जो साम्प्रदायिक दृष्टि से सोचते थे। इसमें

1 Masani, *Britain in India* p. 104.

मुसलमानों, सिक्खों ने अपनी-अपनी माँगें रखीं। केवल गाँधीजी ने ही पूर्ण उत्तरदायी शासन की माँग की और उन्होंने केवल काँग्रेस को ही राष्ट्रीय संस्था बताया। गाँधीजी ने सम्मेलन में कहा कि "**अन्य सभी दल साम्प्रदायिक हैं। काँग्रेस ही एकमात्र भारतीय के हितों का प्रतिनिधित्व करने का दावा कर सकती है। काँग्रेस साम्प्रदायिक संस्था नहीं है। इसका प्लेटफार्म सभी के लिये खुला है।**" परन्तु सरकार ने एक नहीं सुनी क्योंकि वह तो मुसलमान तथा दूसरे ऐसे ही प्रतिनिधियों से गठबन्धन कर चुकी थी। सम्मेलन द्वारा ब्रिटेन, विश्व को केवल यह दिखाना चाहता था कि वह भारतीय समस्या का हल चाहता है परन्तु भारतीय ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचने में असमर्थ हैं।

सम्मेलन में संघीय न्यायपालिका का संगठन, संघीय विधानमण्डल का संगठन और भारतीय संघ में देशी रियासतों के प्रवेश से सम्बन्धित कुछ बातों को तो निश्चित कर लिया गया परन्तु साम्प्रदायिक समस्या का कोई हल नहीं निकाला जा सका। 1 दिसम्बर, 1931 को यह सम्मेलन समाप्त हो गया। सम्मेलन पूर्णतया असफल रहा। सम्मेलन की समाप्ति पर गाँधीजी ने स्पष्ट कह दिया कि "**मेरे और प्रधानमन्त्री के रास्ते अलग-अलग हैं।**"[1]

पुनः सविनय अवज्ञा आन्दोलन 1932-34—दिसम्बर, 1931 को गाँधीजी लन्दन से खाली हाथ स्वदेश लौटे। जब वे मुम्बई आये तो उन्होंने जनसमूह के अभिन्दन के उत्तर में कहा "**मैं खाली हाथ लौटा हूँ, परन्तु मैंने अपने देश की इज्जत को बट्टा नहीं लगने दिया है।**"

गाँधीजी जब स्वदेश लौटे तो लार्ड विलिंगडन का दमन-चक्र तेजी से चल रहा था। ब्रिटिश नौकरशाही ने गवर्नर के निर्देशन में गाँधी-इरविन समझौते का खुला उल्लंघन शुरू कर दिया। वायसराय लार्ड विलिंगडन का दमन-चक्र इतना कठोर चल रहा था कि गाँधीजी के पास पुनः सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने के अतिरिक्त दूसरा कोई रास्ता नहीं था। इस बार शासन का दमन-चक्र बहुत अधिक कठोर था। लाठी प्रहार, गोली वर्षा, सम्पत्ति की जब्ती, सामूहिक जुर्माने नित्य के कार्यक्रम बन गए थे। गाँधीजी को बन्दी बना लिया गया, काँग्रेस को अवैध संगठन घोषित कर दिया गया और समाचार-पत्रों पर कड़े प्रतिबन्ध लगा दिये गये। सन् 1932 के अन्त तक राजनीतिक बन्दियों की संख्या 2 लाख 20 हजार तक पहुँच गई। परन्तु आन्दोलन चलता रहा। सन् 1932 में काँग्रेस का दिल्ली अधिवेशन तथा सन् 1933 का कलकत्ता अधिवेशन पुलिस के पहरे में हुआ। आन्दोलन की अवधि में मुस्लिम लीग ने सरकार का ही साथ दिया। 8 मई, 1933 को गाँधीजी को जेल से रिहा कर दिया गया। 19 मई, 1933 को महात्माजी ने आन्दोलन 11 सप्ताह के लिये स्थगित कर दिया। 14 जुलाई, 1933 को जन-आन्दोलन रोककर व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू किया जो 9 माह तक चलता रहा। जनता के ठण्डे उत्साह को देखते हुए 7 अप्रैल, 1934 को गाँधीजी ने इसे भी समाप्त कर दिया, अतः अप्रैल 1934 को गाँधी जी द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन समाप्त कर दिया गया। पुनः गाँधीजी के नेतृत्व पर आक्षेप लगे। काँग्रेस से प्रतिबन्ध उठा लिया। सन् 1934 को मुम्बई अधिवेशन ने एक प्रस्ताव द्वारा काँग्रेसियों को विधानमण्डलों में प्रवेश करने की अनुमति दे दी। 28 नवम्बर, 1934 को वे काँग्रेस से पृथक् हो गये और हरिजन कल्याण कार्य में लग गये। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री रैम्जे मैक्डोनेल्ड के सन् 1932 के साम्प्रदायिक निर्णय से ऊँची जाति के हिन्दुओं व हरिजनों के बीच बड़ी खाई पैदा हो गई थी। गाँधी ने इस समस्या पर गम्भीरता से विचार किया।

तृतीय गोलमेज सम्मेलन नवम्बर, 1932—17 नवम्बर, 1932 से 24 दिसम्बर, 1932 तक लन्दन में तीसरा गोलमेज सम्मेलन हुआ। काँग्रेस ने सम्मेलन में भाग नहीं लिया। इसमें सरकार के चाटुकार केवल 46 प्रतिनिधियों ने, भाग लिया। तीसरा गोलमेज सम्मेलन भी असफल रहा। इसमें कोई नई बात नहीं हुई, वरन् प्रथम दो सम्मेलनों की पुष्टि ही की गई थी।

सविनय अवज्ञां आन्दोलन की असफलता—सविनय अवज्ञा आन्दोल की कोई ठोस उपलब्धि नहीं थी। न तो भारत को स्वराज्य ही मिला और नहीं स्वराज का कोई आश्वासन ही प्राप्त हुआ। आन्दोलन में भाग लेने वाले लोगों में जिस आत्मबल की आवश्यकता थी उसकी प्रायः लोगों में कमी रही। गाँधीजी द्वारा अकारण आन्दोलन समाप्त किया जाना आलोचना का विषय है। सुभाषचन्द्र बोस के अनुसार, "**आन्दोलन का स्थगन उसकी असफलता की घोषणा है। मुस्लिम लीग के तत्वाधान में अधिकांश मुसलमान इस आन्दोलन से दूर रहे। इतना ही नहीं, डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में अछूत लोगों ने भी इस आन्दोलन में उत्साह से भाग नहीं लिया।**"

1 Coupland, *The Indian Problem*, Part, p. 127.

सविनय अवज्ञा आन्दोलन का महत्व—सविनय अवज्ञा आन्दोलन भी पूर्व में हुए असहयोग आन्दोलन की भाँति ही समाप्त हो गया किन्तु यह कहना गलत होगा कि इस आन्दोलन का राष्ट्रीय आन्दोलन में कोई योगदान नहीं रहा। भले ही इसकी कोई ठोस उपलब्धि न रही हो पर यह आन्दोलन राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष की महत्वपूर्ण कड़ी है। इस आन्दोलन ने देश को एक नए मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया जहाँ से उसे स्वाधीनता प्राप्ति के लिये आगे बढ़ना था। इस आन्दोलन के महत्व या प्रभाव को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है :

(1) **ब्रिटेन में सुधारवाद की भावना**—सविनय अवज्ञा आन्दोलन के परिणामस्वरूप ब्रिटेन की सरकार का ध्यान भारत में सुधार करने की ओर गया। अब ग्रेट-ब्रिटेन की संसद ने भारत के प्रशासन में सुधार के लिये योजना बनानी आरम्भ कर दी।

(2) **हिन्दू एकता**—इस आन्दोलन के मध्य में ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिक निर्णय करके हिन्दुओं में मतभेद उत्पन्न करना चाहा था। किन्तु गाँधीजी ने हिन्दुओं में एकता स्थापित करने का संकल्प लिया। पूना पैक्ट द्वारा उन्होंने हरिजनों को हिन्दुओं से अलग होने से बचाया।

(3) **भारत में साम्प्रदायिकता का बढ़ता प्रभाव**—सविनय अवज्ञा आन्दोलन के कारण मुस्लिम लीग का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ने लगा क्योंकि इस आन्दोलन में मुसलमानों ने इसे सहयोग न देकर मुस्लिम लीग को अत्यधिक सहयोग दिया, केवल राष्ट्रीय मुसलमानों ने आन्दोलन में भाग लिया था। इससे भारत में हिन्दू-मुस्लिम एकता भंग हो गई।

(4) **नये विधान की प्रस्तावना**—सविनय अवज्ञा आन्दोलन का महत्व इसलिए भी है कि ब्रिटिश संसद द्वारा सन् 1935 ई. में जो अधिनियम पारित किया गया था, वह इस आन्दोलन का परिणाम था।

(5) **राजनीतिक जागृति**—इस आन्दोलन के माध्यम से न केवल पुरुषों में वरन् पहली बार महिलाओं मे जागृति देखने को मिली जो राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रकृति में क्रान्तिकारी परिवर्तन का सूचक था। भारतीय महिलाओं ने अपने सामाजिक पिछड़ेपन और परम्पराओं को चीरते हुए सक्रिय रूप से देश की आजादी में भाग लिया। इस आन्दोलन ने देश में राजनीतिक चेतना का तूफान ला दिया।

संक्षेप में राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष के इतिहास में 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' का स्थान अमर है।